Indian J. Soc. & Pol. 13 (02):119-122: 2026 **ISSN: 2348-0084 (PRINT)**
31 July 2026 **ISSN: 2455-2127(ONLINE)**

सामाजिक विघटन के दौर में प्रासंगिक हस्तक्षेपः कुटुम्ब प्रबोधन

धर्मेन्द्र प्रताप श्रीवास्तव[1], अजय सिंह[2]

[1]असिस्टेंट डायरेक्टर (शैक्षणिक), सीएसएसपी, कानपुर, उ0प्र0, भारत
[2]अध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग, हंडिया पी.जी.कालेज हंडिया, प्रयागराज, उ0प्र0, भारत

ABSTRACT

हम एक सशक्त सांस्कृतिक परम्परा के उत्तराधिकारी हैं । हमारे लिए तो सम्पूर्ण पृथ्वी ही परिवार है और हमने तो प्रकृति के हर जीव, जंतु, चर–अचर, दृश्य–अदृश्य, ग्रह नक्षत्र सभी से आत्मीय सम्बन्ध जोड़ा है। दुनियां चन्द्रमा को एक निर्जीव खगोलीय पिण्ड के रूप में देखती है वहीं हमारा जनमानस चाँद से रिश्तेदारी की भाषा में बात करता है। हमारी तो संस्कृति कभी व्यक्ति केन्द्रित रही नहीं, हमने तो आत्म–केन्द्रण को अभिशाप माना था । राम के त्याग से अयोध्या की पुनर्स्थापना के साक्षी रहे हैं हम, तो दुर्योधन के स्वार्थवश हस्तिनापुर का विनाश भी हमारी श्रुतियों में है। पर सत्य से विमुख भी तो नहीं हो सकते, और सत्य यही है कि आधुनिकता, उपभोक्तावाद और पश्चिमी जीवन शैली के अनुकरण ने भारत की आत्मा को झकझोर दिया है, सृष्टि को कुटुम्ब मानने वाली चेतना विलुप्त हुई है और व्यक्ति आत्म–केन्द्रित हुआ है। एक सामान्य सी सामाजिक प्रवृत्ति दिखायी देती है संवेदना पर निजी स्वार्थों को वरीयता दी जा रही है, दायित्व से मुक्ति की चाह में हर व्यक्ति एकाकी होता जा रहा है, संबंध नितान्त वैयक्तिक होते जा रहे हैं, हर व्यक्ति अधिकारों की अपेक्षा तो करता है पर उत्तरदायित्व बोध समाप्त प्राय है। वृद्ध माता–पिता वृद्धाश्रम में जीवन के अंतिम दिन गिन रहे हैं, जबकि घर में पालतू कुत्ते के लिए नई कार, वातानुकूलित कमरा और नियमित 'वॉक' की व्यवस्था है । परम्परागत वैवाहिक संरचनाएं भार लगने लगी हैं लिव इन संबंधों को आधुनिकता और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है । लैंगिक संतुष्टि की चाह में वाइफ स्वैपिंग और समलैंगिकता को स्वीकारने की बहस चल रही है। व्हाट्सऐप वीडियो कॉल पर अंतिम संस्कार की रस्में निभाई जाने लगी हैं और मुखाग्नि भी प्रतीकात्मक रूप से दी जाने लगी है। अब गावों में भी छप्पर उठाने के लिए गाँव के लोग नहीं आते, साझा श्रम, सहभोज और पारस्परिक उत्तरदायित्व की परंपराएँ विलुप्त प्राय हैं। आज अनेक परिवार ऐसे हैं जहाँ एक ही छत के नीचे रहने वाले लोग आपस में संवाद नहीं करते, बेटे को खाने के लिए बुलाने के लिए भी फोन काल करना पड़ता है । भोजन के समय भी मोबाइल फोन अधिक महत्वपूर्ण हो गया है और आमने–सामने की बातचीत असुविधाजनक लगने लगी है। 'वसुधैव कुटुम्बकम' की अवधारणा दी गयी थी, हर व्यक्ति ने अपने हिस्से की वसुधा ही बाँट ली है।

KEYWORDS: *सामाजिक विघटन, कुटुम्ब प्रबोधन, संस्कृति, समाज*

भारतीय दार्शनिक परम्परा में कुटुम्बीय चेतना

इससे पूर्व कि हम 'कुटुम्ब प्रबोधन' की संकल्पना और उसकी अपरिहार्यता पर बात करें यह आवश्यक हो जाता है कि हम उस चेतना पर दृष्टि डालें जो भारतीय सामाजिक जीवन का आधार रही है जिसे दर्शन ने कुटुम्बीय चेतना कहा है । यह वह चेतना है जो समाज की कल्पना व्यक्ति–केंद्रित न मानकर कुटुम्ब–केंद्रित मानती है। कुटुम्ब या परिवार ऐसी संस्था के रूप में स्वीकृत रहे हैं जहाँ प्रेम, सहयोग, सहकार और सौहार्द के मूल्य केवल सिखाए नहीं जाते, बल्कि जीए जाते हैं। यह रक्त–संबंधों का समूह मात्र नहीं है, बल्कि संस्कारों की प्रथम पाठशाला, सामाजिक उत्तरदायित्व की प्रयोगशाला और मानवीय संवेदना का स्रोत रहा है। सामयिक नैतिक और सांस्कृतिक अधोपतन का प्रमुख कारण इसी कुटुम्ब चेतना के ह्रास में अन्तर्निहित है ।

कुटुम्ब की अवधारणा का मूल स्रोत वैदिक साहित्य है। ऋग्वेद से लेकर उपनिषदों तक परिवार को दार्शनिक अनुशासन, नैतिक प्रशिक्षण और सभ्यतागत निरंतरता का माध्यम माना गया है। । ऋग्वेद का प्रसिद्ध सूक्त "संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम" (ऋग्वेद 10.191.2) कुटुंबीय चेतना का विस्तार है। उपनिषदिक दर्शन मानव जीवन के अंतिम उद्देश्य 'आत्मज्ञान' और 'ब्रह्मबोध' पर केन्द्रित है । किंतु यह आत्मबोध किसी प्रकार के सामाजिक वैराग्य या एकांत साधना तक सीमित नहीं करता। यह व्यक्ति को व्यापक मानव–समुदाय और समस्त सृष्टि से जोड़ती है। प्रसिद्ध श्लोक "अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्। उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।" (हितोपदेश 2,3–71) भारतीय दर्शन के वैश्विक मानवतावाद का उद्घोष करता है। इस श्लोक में 'निज' और 'पर' का भेद 'लघुचेतस' अर्थात् संकीर्ण चेतना का प्रतीक माना गया है, जबकि उदार चरित्र वाले व्यक्ति के लिए संपूर्ण पृथ्वी एक परिवार के समान है।

मनुस्मृति में गृहस्थाश्रम को सामाजिक जीवन का केंद्र मानते हुए कहा गया है "गृहस्थ्येव हि धर्माणा सर्वेषाँ मूल मुच्यते" । मनुस्मृति में कुटुम्ब को सामाजिक अनुशासन का साधन माना गया है। संयम, त्याग, दान, अतिथि–सत्कार और श्रम ये सभी गुण कुटुंबीय जीवन के माध्यम से विकसित होते हैं। यहाँ भी व्यक्ति की स्वतंत्रता को नकारा नहीं गया है उसे सामाजिक मर्यादा से संतुलित

1: Corresponding Author

किया गया है। यही संतुलन भारतीय सामाजिक दर्शन की विशिष्ट पहचान रही है।

लोक–संस्कृति, ग्राम–जीवन और कुटुम्ब चेतना

कुटुम्ब चेतना का वास्तविक जीवंत रूप भारतीय लोक–संस्कृति और ग्राम–जीवन में परिलक्षित होता है। ग्राम भारतीय समाज की आधारभूत इकाई रहा है, जहाँ कुटुम्ब की परिधि घर की चार दीवारों से आगे बढ़कर पड़ोस, बिरादरी और संपूर्ण ग्राम–समुदाय तक विस्तारित होती थी। यह विस्तार परंपरा, व्यवहार और लोगों के साझा जीवनानुभवों के द्वारा संपन्न होता था। भारतीय ग्रामों में साझा श्रम की परंपरा – जैसे छप्पर उठाना, फसल कटाई, कुआँ या तालाब निर्माण कुटुम्ब प्रबोधन की स्वाभाविक पाठशाला थी। व्यक्ति अपने श्रम को सामुदायिक कल्याण के लिए अर्पित करता था। यह प्रक्रिया व्यक्ति में परस्पर निर्भरता, कृतज्ञता और सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना को विकसित करती थी।

लोक–संस्कृति में सहभोज का विशेष महत्व रहा है। विवाह, जन्म, मृत्यु या त्योहार, हर अवसर पर सामूहिक भोजन सामाजिक समता और आत्मीयता का प्रतीक था। जाति, आर्थिक स्थिति और व्यक्तिगत भिन्नताओं के बावजूद एक साथ बैठकर भोजन करना सामाजिक दूरी को कम करता था। इस संदर्भ में कुटुम्ब केवल जैविक इकाई न रहकर सांस्कृतिक समुदाय का रूप ग्रहण कर लेता था। प्रसिद्ध समाजशास्त्री एम.एन. श्रीनिवास (1966) ने भारतीय ग्राम–समाज की इस विशेषता को "रिलेशनल सोशलिटी" की संज्ञा दी है, जहाँ सामाजिक संबंध औपचारिक नियमों की अपेक्षा पारस्परिक दायित्वों और परंपराओं से संचालित होते हैं। इस संरचना में व्यक्ति का अस्तित्व संबंधों से परिभाषित होता है, न कि केवल उसके अधिकारों से।

औपनिवेशिक प्रभाव, आधुनिकता और कुटुम्बीय चेतना का क्षरण

भारतीय कुटुम्बीय चेतना पर यूँ तो प्रहार होते रहे कंतु इसे सर्वाधिक कमजोर किया ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन ने। इसने न केवल राजनीतिक और आर्थिक संरचनाओं को बदला, बल्कि भारतीय समाज के सांस्कृतिक ताने–बाने को भी गहराई से प्रभावित किया। पश्चिमी व्यक्तिवाद, विधिक औपचारिकता और उपभोक्तावादी जीवन–दृष्टि ने भारतीय सामूहिकता को धीरे–धीरे कमजोर किया। औपनिवेशिक शिक्षा प्रणाली ने व्यक्ति को समुदाय से अधिक राज्य और बाजार से जोड़ दिया। अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम से स्व–उन्नति को सामाजिक आदर्श के रूप में प्रस्तुत किया गया, जिसके परिणामस्वरूप कुटुम्ब और समुदाय के प्रति दायित्व–बोध गौण होता चला गया।

आधुनिकता के साथ आए औद्योगीकरण और नगरीकरण ने संयुक्त परिवार की आर्थिक उपयोगिता को कम किया। जहाँ पहले कुटुम्ब उत्पादन की इकाई था, वहीं अब वह उपभोग की इकाई बनता गया। इस परिवर्तन ने कुटुम्ब के भीतर भूमिकाओं को भी बदल दिया । बुजुर्गों का अनुभव, बच्चों का सामूहिक पालन और पीढ़ियों का सह–अस्तित्व धीरे–धीरे अप्रासंगिक ठहराया जाने लगा। जर्मन समाजशास्त्री अलरिच बेक (1992) ने आधुनिक समाज को "प्दकपअपकनंसप्रमक ैवबपमजल" कहा है, जहाँ व्यक्ति पारंपरिक संबंधों से मुक्त तो होता है, किंतु नए प्रकार की असुरक्षाओं से घिर जाता है। भारतीय संदर्भ में यह असुरक्षा भावनात्मक अलगाव, एकाकीपन और पारिवारिक विघटन के रूप में सामने आती है।

यह वह दौर था जब भारत में कुटुंबीय चेतना कमजोर हुई । बाद में भी गाँवों की सामूहिक संस्कृति, साझा श्रम, सहभोज और पारस्परिक उत्तरदायित्व की परंपराएँ धीरे–धीरे क्षीण होती चली गईं । एक ही घर की चारदीवारी के भीतर व्यक्ति अपनी–अपनी दीवारों में सिमटता चला गया। इस प्रक्रिया ने व्यक्ति को आत्मकेंद्रित बनाया और सांस्कृतिक पतन को गति दी। जैसे–जैसे ग्राम–जीवन का क्षरण हुआ, वैसे–वैसे कुटुम्ब की विस्तारित परिधि भी सिमटती चली गई। आजीविका की खोज में लोगों ने गावों से नगरों की ओर पलायन किया, नगरीय जीवन बहुत सारी अनियमितताओं और व्यस्तताओं ने संबंधों की उस आत्मीयता को कमजोर किया, जो कुटुम्ब की आधारशिला थी। समाजशास्त्री योगेन्द्र सिंह(1973) ने इसे "संक्रमणशील आधुनिकता" कहा है जहाँ परंपरा और आधुनिकता के बीच निरंतर तनाव बना रहता है। आधुनिकता और भौतिकता की चाह में हमने उन पुरातन मूल्यों का परित्याग कर दिया जिसमें सम्वेदना थी, सम्मान था और सहकार भी। अस्थायी संबंध, त्वरित संतुष्टि और प्रतिबद्धता से बचाव की प्रवृत्तियाँ प्रभावी हो गयीं ।

कुटुम्ब प्रबोधनः अवधारणा तथा वैचारिक आधार

अधोपतन की इस वेगवती धारा के प्रतिकार हेतु 'कुटुम्ब प्रबोधन' की अवधारणा प्रस्तुत होती है। जिसे राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ ने एक सांस्कृतिक आन्दोलन के रूप में स्वीकार किया है। इसका तात्पर्य है कुटुम्बीय चेतना का पुनरबोध । प्रेम, सहयोग, सम्मान, सहकार की भावना और दयित्ववोध की पुनरप्रतिष्ठा। इसे बड़ी स्पष्टता से परिभाषित करते हुए प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने कहा कुटुम्ब प्रबोधन यानि उस परिवार की संस्कृति का पोषण जो भारतीय सभ्यता का आधार है, जो भारतीय संस्कृति से प्रेरित है, जो जड़ों से जुड़े हैं, परिवार के मूल्य, बुजुर्गों का सम्मान,नारी शक्ति का आदर, नौजवानों में संस्कार, अपने परिवार के प्रति दायित्व को निभाना, उसे समझना, उस दिशा में परिवार को, समाज को जागरूक करना । (भारतीय जनता पार्टी, 2025))

यह पीढ़ियों के बीच संबंधों और कर्तव्यबोध को मजबूत करता है, यह एक नैतिक और आध्यात्मिक आह्वान है जो पीढ़ियों के बीच जिम्मेदारी, प्रेम और सम्मान को बढ़ावा देता है इसका उद्देश्य भारतीय समाज के तानेदृबाने को मजबूत करना है। यह एक ऐसा मिशन है जो राष्ट्र को एक विस्तारित परिवार के रूप में मजबूत करने की भूमिका पर जोर देता है. (ऑर्गनाइजर, 23 फरवरी 2025)

सर्वाधिक महत्वपूर्ण यह कि यह कोई दार्शनिक सिद्धांत मात्र प्रस्तुत नहीं करता बल्कि करणीय कार्यों की एक सूची प्रस्तुत

करता है जिसे बड़ी सहजता से अपने परिवार, समाज में संपन्न किया जाना चाहिए । (होसबाले, 2025) इसमें अपेक्षा है कि दृ

1. परिवार के सभी सदस्य कम से कम सप्ताह में एक दिन एक साथ मिलकर भोजन करें ।

2. परिवार में यज्ञ अनुष्ठान संस्कार व्रत त्यौहार के द्वारा घर का वातावरण सामाजिक सांस्कृतिक और उत्सवात्मक बना रहे ।

3. हमारे परिवार में भजन भोजन के साथ मित्र परिवारों का आना–जाना रहे ।

4. हमारे परिवार का इतिहास परंपरा तथा करणीय सामाजिक कार्य की घर में सभी छोटे–बड़े के साथ चर्चा हो ।

5. हमारा घर आदर्श हिंदू घर बने ऐसा आग्रह बना रहे । अनावश्यक खर्च दहेज जैसी कुरीतियों से बचा जाय ।

6. हमारे घर में महिलाओं का सम्मान हो ।

यह बड़ी साधारण सी अपेक्षा है कि परिवार के लोग साथ बैठ कर भोजन एवं भजन करें, पूर्वजों की परम्पराओं और देश–धर्म से जुड़े विषयों पर चर्चा करें तथा स्मार्टफोन से दूर रहकर पारिवारिक मूल्यों और संस्कारों को मजबूत करें। ताकि कुटुम्ब चेतना को पुनः प्रवर्तित किया जा सके।

कुटुम्ब प्रबोधन की विशिष्टताएं

कुटुम्ब प्रबोधन का अर्थ अतीत में लौटना नहीं रू यह न तो संयुक्त परिवार को अनिवार्य मॉडल मानता है, न ही किसी एक सामाजिक ढाँचे को आदर्श घोषित करता है। इसका आग्रह संरचना पर नहीं, संवेदना पर हैय आकार पर नहीं, आत्मा पर है। यह आधुनिक जीवन की वास्तविकताओं को स्वीकार करता है, शहरीकरण, कार्यशील महिलाएँ, एकल परिवार, गतिशील जीवन शैली, इन सबको नकारे बिना यह विश्वास जगाता है कि इन परिस्थितियों में भी संवाद संभव है । उत्तरदायित्व निभाया जा सकता है और पीढ़ियों के बीच सम्मान और सहअस्तित्व बचाया जा सकता है।

कुटुम्ब प्रबोधन का आशय परिवार को चेतन इकाई के रूप में पुनः प्रतिष्ठित करना रू इसका आशय परिवार को केवल जैविक या कानूनी इकाई मानने से आगे बढ़कर उसे संस्कार, दायित्व, संवाद और सामाजिक उत्तरदायित्व की चेतन इकाई के रूप में पुनः प्रतिष्ठित करना है। यह अवधारणा इस विश्वास पर आधारित है कि समाज और राष्ट्र की गुणवत्ता अंततः परिवारों की गुणवत्ता पर निर्भर करती है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय का एकात्म मानववाद भारतीय सामाजिक दर्शन में कुटुम्ब प्रबोधन की वैचारिक आधारशिला प्रस्तुत करता है। डॉ उपाध्याय के अनुसार व्यक्ति को न तो केवल आर्थिक इकाई के रूप में देखा जा सकता है और न ही उसे समाज से विलग एक स्वतंत्र सत्ता माना जा सकता है। व्यक्ति, कुटुम्ब, समाज, राष्ट्र और प्रकृति, ये सभी एक अविभाज्य समग्र के अंग हैं। एकात्म मानववाद की मूल अवधारणा यह है कि मानव जीवन के भौतिक, बौद्धिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक, चारों आयामों का संतुलित विकास आवश्यक है। उपाध्याय के शब्दों में, "व्यक्ति की स्वतंत्रता आवश्यक है, किंतु वह स्वेच्छाचार में परिवर्तित न हो" यह चेतावनी आधुनिक समाज के संदर्भ में विशेष रूप से प्रासंगिक है।

जीवन अधिकारों की प्रत्याशा का नाम नहीं कर्तव्यों के उत्तरदायित्व का नामरू कुटुम्ब प्रबोधन की जड़ें भारतीय दर्शन की उस परंपरा में हैं जहाँ जीवन को अधिकारों से नहीं, कर्तव्यों से परिभाषित किया गया है। डॉ उपाध्याय ने पश्चिमी व्यक्तिवाद की आलोचना करते हुए कहा कि वहाँ समाज व्यक्ति के संयोग से बनता है, जबकि भारतीय दृष्टि में व्यक्ति समाज से जन्म लेता है। भारतीय कुटुम्ब व्यवस्था में अधिकारों से पहले कर्तव्यों पर बल दिया गया। कुटुम्ब प्रबोधन इसी कर्तव्यबोध को पुनर्जीवित करने का प्रयास है। भारतीय सामाजिक चिंतन में व्यक्ति स्वतंत्र अवश्य है, पर वह संबंधदृविहीन नहीं है। उसकी स्वतंत्रता संबंधों के भीतर विकसित होती है, उनके विरुद्ध नहीं। इस संकल्पना का मूल विश्वास यह है कि व्यक्ति पहले संतान होता है, फिर नागरिक, पहले परिवार का सदस्य होता है, फिर उपभोक्ता, पहले दायित्वदृबोध से युक्त होता है, फिर अधिकारदृसचेत. कुटुम्ब प्रबोधन इस क्रम को उलटने के समकालीन आग्रह का वैचारिक प्रतिकार है।

कुटुम्ब प्रबोधन की संकल्पना राष्ट्र को सत्ता–केंद्रित नहीं, समाज–केंद्रित मानती है। इस दृष्टि में राष्ट्र का निर्माण ऊपर से नहीं, नीचे से होता है – घर से, परिवार से, संबंधों से। राज्य कानून बना सकता है, बाजार सुविधा दे सकता है, लेकिन संस्कार न राज्य दे सकता है, न बाजार । संस्कार केवल कुटुम्ब से आते हैं–अनुकरण से, संवाद से, सहजीवन से। इसलिए कुटुम्ब भाव को जागृत करना न केवल समय की मांग है वरन अपरिहार्य भी।

कुटुम्ब प्रबोधन नैतिक उपदेश या निजी जीवन में हस्तक्षेप नहींरू वस्तुतः यह किसी पर नियंत्रण की नहीं, आत्मानुशासन की संकल्पना है। यह किसी जीवनदृशैली को थोपने का प्रयास नहीं, बल्कि यह स्मरण कराने का प्रयास है कि हमारे चुनाव केवल व्यक्तिगत नहीं होते–उनका सामाजिक प्रभाव भी होता है। यह अवधारणा यह नहीं पूछती कि आप कैसे जीते हैं, यह पूछती है कि आपके जीने से समाज में कौन सी चेतना निर्मित हो रही है।

निष्कर्षः

यह शोध–लेख इस मूल प्रतिपाद्य को स्थापित करता है कि कुटुम्ब प्रबोधन भारतीय सभ्यता की केवल सामाजिक संरचना नहीं, बल्कि उसका दार्शनिक, नैतिक और सांस्कृतिक मेरुदंड रहा है। भारतीय चिंतन में व्यक्ति को कभी भी एकाकी इकाई के रूप में नहीं देखा गयाय वह सदैव परिवार, समाज, राष्ट्र और अंततः समूची वसुधा से संबद्ध रहा है। यह समकालीन भारत के लिए कोई वैकल्पिक विचार नहीं, बल्कि एक अनिवार्य वैचारिक हस्तक्षेप है। यह आधुनिकता के विरुद्ध नहीं, बल्कि आधुनिकता को मानवीय बनाने का प्रयास है। यह स्वतंत्रता का विरोध नहीं करता बल्कि स्वतंत्रता को उत्तरदायित्व से जोड़ने की चेष्टा है। यह बताता है कि जब तक कुटुम्ब संवेदनशील रहेगा, समाज संतुलित रहेगा, और राष्ट्र सुदृढ़ रहेगा।

इस शोध पत्र का निष्कर्ष यह है कि कुटुम्ब प्रबोधन अतीत की स्मृति नहीं, बल्कि भविष्य की आवश्यकता है। यह कोई रूढ़िवादी आग्रह नहीं, बल्कि आधुनिक चुनौतियों जैसे सामाजिक विघटन, नैतिक पतन, पर्यावरणीय संकट और संबंधों की अस्थिरता का भारतीय वैचारिक समाधान है। कुटुम्ब प्रबोधन के माध्यम से ही हम पुनः व्यक्ति को समाजोन्मुख, समाज को उत्तरदायी और वसुधा को संरक्षित करने की दिशा में अग्रसर हो सकते हैं।

REFERENCES

उपाध्याय, दीनदयाल. (2015). एकात्म मानववाद- https://deendayalupadhyaya-org/books/

ऑर्गेनाइजर (2025, फरवरी 23). Kutumb Prabodhan: An awakening call to resurgent India- Organiser- https://organiser-org/2025/02/23/279247/bharat/kutumb&prabodhan&an&awakening&call&to&resurgent&india/

बेक, अलरिच (1992), *रिस्क सोसाइटीः टुवर्ड्स अ न्यू मॉडर्निटी, लन्दन,* सेज पब्लिकेशन्स, https://archive-org/details/risksocietytowar0000beck/page/2/mode/2up

भारतीय जनता पार्टी ,(2025), PM Modi says: संघ के पंच परिवर्तन से बनेगा भारत आत्मनिर्भर और शक्तिशाली! YouTube video https://youtu-be/09KbiÛaUhcs\si¾HÛZMU04l82G4y9v9

श्रीनिवास, एम.एन. (1966), *सोशल चेंज इन मॉडर्न इण्डिया,* बर्कले यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस, https://archive-org/details/socialchangeinmo0000srin

सिंह योगेन्द्र, (1973), *मॉडर्नाइजेशन ऑफ इण्डियन ट्रेडिशन,* नई दिल्ली, थोमसन प्रेस

होसबाले, दत्तात्रेय, (2025) *राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ : संघ यात्रा : संगठन व सेवा के100 वर्ष,* लखनऊ, लोकहित प्रकाशन,